1949B Gurukuls and Gyanpeeth are useful

Possibly motivated by admission of Mahendra at the Gurukul in Chaurashi, Mathura

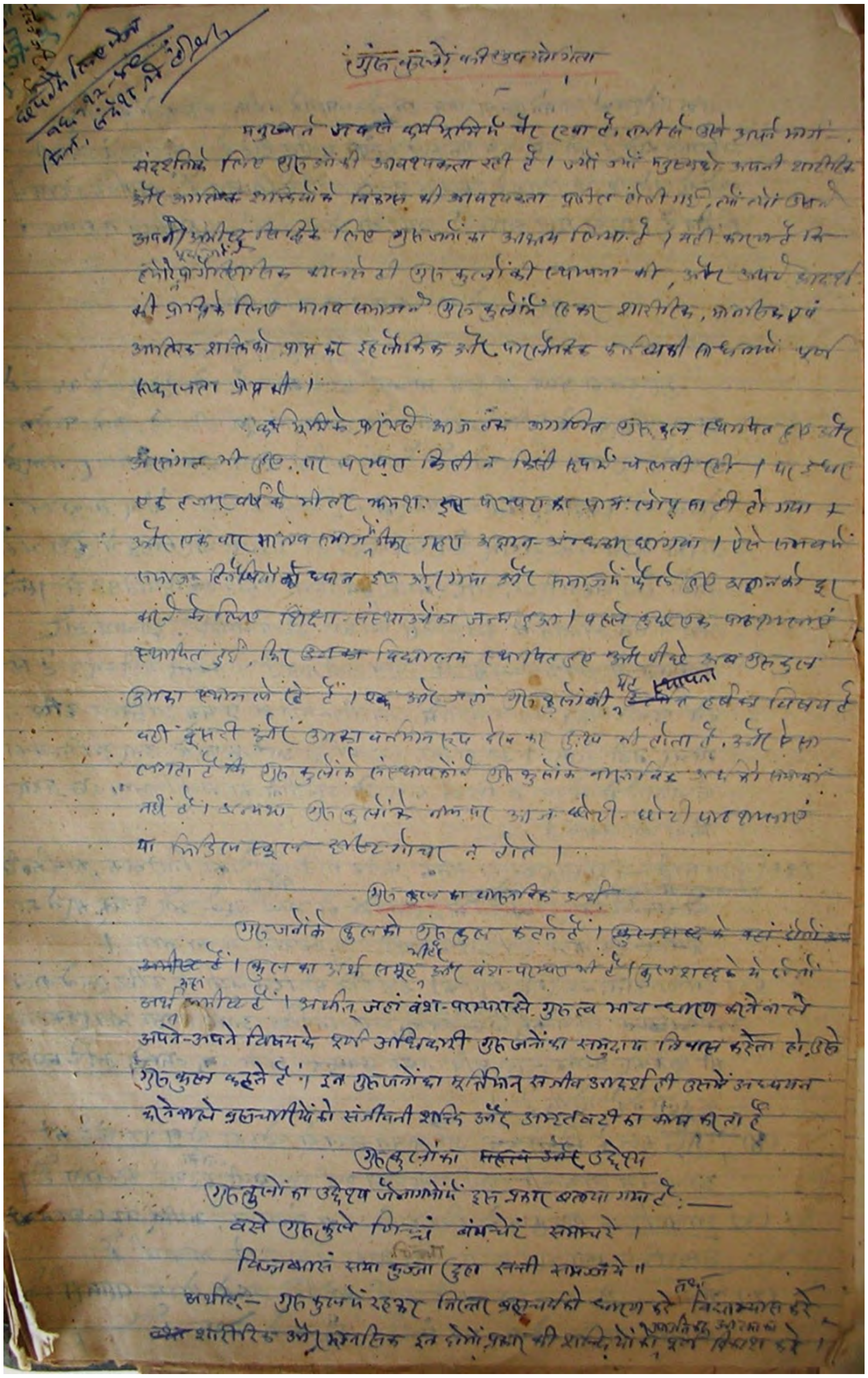

गुरुकुलों की उपयोगिता

मनुष्य ने जब से कर्मक्षेत्र में पैर रखा है, तभी से उसे अपने ज्ञान-संवर्धन के लिए गुरुओं की आवश्यकता रही है। ज्यों ज्यों मनुष्य को अपनी शारीरिक और आत्मिक शक्तियों के विकास की आवश्यकता प्रतीत होती गई, त्यों त्यों उसने अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए गुरुजनों का आश्रय लिया है। यही कारण है कि हमारे प्रागैतिहासिक काल से ही गुरुकुलों की स्थापना थी, और अपने आदर्श की प्राप्ति के लिए मानव समाज ने गुरुकुलों में रहकर शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक शक्ति को प्राप्त कर इहलौकिक और पारलौकिक कार्यों की साधना में पूर्ण सफलता प्राप्त की।

सृष्टि के प्रारम्भ से आज तक असंख्य गुरुकुल स्थापित हुए और [illegible] भी हुए, पर परम्परा किसी न किसी रूप में चलती रही। पर इधर एक हजार वर्ष के भीतर क्रमशः इस परम्परा का प्रायः लोप सा ही हो गया और एक बार भारतीय समाज में गहरा अज्ञान-अन्धकार छा गया। ऐसे समय में जगज्जन हितैषियों का ध्यान इस ओर गया और समाज में फैले हुए अज्ञान को दूर करने के लिए शिक्षा-संस्थाओं का जन्म हुआ। पहले हाईस्कूल, पाठशालाएं स्थापित हुईं, फिर [illegible] विद्यालय स्थापित हुए और पीछे अब गुरुकुल उनका स्थान ले रहे हैं। एक ओर जहां गुरुकुलों की यह स्थापना हर्ष का विषय है वहीं दूसरी ओर उनका वर्तमान रूप देख कर दुःख भी होता है, और ऐसा लगता है कि गुरुकुलों के संस्थापकों ने गुरुकुलों के वास्तविक अर्थ को समझा नहीं है। अन्यथा गुरुकुलों के नाम पर आज छोटी-छोटी पाठशालाएं या मिडिल स्कूल [illegible] न होते।

गुरुकुल का वास्तविक अर्थ

गुरुजनों के कुल को गुरुकुल कहते हैं। ~~कुल शब्द के यहां दोनों अभीष्ट हैं।~~ कुल का अर्थ समूह और वंश-परम्परा भी है। कुल शब्द के ये दोनों अर्थ यहां अभीष्ट हैं। अर्थात् जहां वंश-परम्परा से गुरुत्व भाव धारण करने वाले अपने-अपने विषय के पूर्ण अधिकारी गुरुजनों का समुदाय निवास करता हो, उसे गुरुकुल कहते हैं। इन गुरुजनों का प्रतिदिन सजीव आदर्श ही उसमें अध्ययन करने वाले ब्रह्मचारियों को संजीवनी शक्ति और अमृत बूटी का काम करता है।

गुरुकुलों का ~~महत्व और~~ उद्देश्य

गुरुकुलों का उद्देश्य [illegible] इस प्रकार बतलाया गया है:—

वसे गुरुकुले नित्यं ब्रह्मचर्यं समाचरेत्।
विद्याभ्यासं सदा कुर्यात् द्विविधा शक्तीः समर्जयेत्॥

अर्थात्— गुरुकुल में रहकर नित्य ब्रह्मचर्य को धारण करे तथा विद्याभ्यास करे, शारीरिक और मानसिक (आत्मिक) इन दोनों प्रकार की शक्तियों का पूर्ण विकास करे।

उक्त उद्देश्यको सामने रखकर जब हम आर्यसमाजके वर्तमान गुरुकुलों की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो हमें सब गुरुकुल अपंग प्रतीत होते हैं। मोटे रूपमें उपर्युक्त बातोंके रहते हुए भी आजके गुरुकुल सच्चे अर्थोंमें निःसार हैं, वास्तविक उद्देश्य से विहीन हैं। इसका मूल कारण है कार्यकर्ताओं का निजी उत्तरदायित्व न समझना।

गुरुकुल के कार्यकर्ता और उनके कर्तव्य

गुरुकुल का प्राण या मुख्य आधार कुलपति या आचार्य है। जो गुरुकुलमें २४ घंटे रहकर गुरुकुल के प्रत्येक कार्यकर्ता और स्नातक पर पूर्ण दृष्टि रखे, उनके प्रत्येक कार्यको, हर गति-विधियों और दैनिक चर्या को सूक्ष्म एवं गंभीर नजरसे देखता रहे। कहीं पर किसी भी प्रकार की कोई भी त्रुटि दिखाई देने पर तत्काल उसका संशोधन, सुधार और परिमार्जन करे। संग्रह और निग्रह में कुशल हो, त्यागी हो, सहनशील, धीर, गंभीर, स्थिर प्रकृति एवं स्थितप्रज्ञ हो। सच्चे अर्थ में उसे आचार्य के सर्वगुणों से परिपूर्ण होना चाहिए. ~~आचार्य और कुलपति ये अधिष्ठाता के ही पर्यायवाची नाम हैं। किन्तु~~ यही कारण है कि हमें प्राचीन गुरुकुल-व्यवस्थामें उक्त तीन पदों का पृथक् अस्तित्व दृष्टि-गोचर नहीं होता। आज यदि एक व्यक्ति अधिष्ठाता के उत्तरदायित्वको संभालने के योग्य न मिल सके तो उक्त तीनों का कार्य विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है:—

(१) कुलपति — गुरुकुल का जनक, प्रत्येक गति-विधि का निरीक्षक, कार्यकर्ताओं का नियोजक, स्नातकों को प्रवेश देने और पृथक् करने का एक मात्र पूर्ण अधिकारी कुलपति माना जाय।

(२) अधिष्ठाता — गुरुकुल की २४ घंटे की दिन-चर्या पर दृष्टि रखने वाला, संस्था के उद्देश्यों का प्रचारक, भवन-निर्माण आदि समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर प्रत्येक सुख-सुविधा का संयोजक व्यक्ति अधिष्ठाता कहलाने के योग्य है।

(४) गृहपति — गुरुकुल के अध्यापन कालको छोड़कर शेष १८ घंटे की छात्रालय सम्बन्धी सर्व व्यवस्था का पूर्ण उत्तरदायी व्यक्ति गृहपति कहलाता है।

(३) आचार्य — गुरुकुल के विद्या-विभाग का संचालक, अर्थात् पठन-पाठन की सम्पूर्ण व्यवस्था करने वाला और उसका उत्तरदायी आचार्य है।

(५) मंत्री — गुरुकुल सम्बन्धी सर्व कार्यों में सबको योग्य परामर्श देने वाला व्यक्ति नेता या मंत्री कहलाने योग्य है।

पाठ्यक्रम

~~प्रत्येक~~ गुरुकुलोंका स्वतंत्र पाठ्यक्रम होना चाहिए। छात्रोंके शारीरिक विकास पर पूरा ध्यान रखा जाना अत्यन्त आवश्यक है। आसन, प्राणायाम, खेल, कूद और लकड़ी संचालन में पूर्ण दक्षता प्राप्त करनी चाहिए। शरीरके प्रत्येक अंगोंको सुदृढ़, सुडौल, और शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। गुरुकुलोंके ब्रह्मचारी को देखते ही प्रत्येक व्यक्ति मंत्रमुग्ध सा हो जाय, तभी गुरुकुलकी महत्ता है। पेड़ पर चढ़ना, नदीमें तैरना, दौड़ना आदि कलाओंमें निष्णात करनेकी ओर भी गुरुकुलोंका ध्यान होना चाहिए।

मानसिक विकासके लिए गुरुकुलोंका वातावरण स्वतंत्रतापूर्ण होना आवश्यक है। अनुशासन के नाम पर लोग छात्रोंको कायदे कानूनोंमें जकड़कर प्रतिभाशाली बनाने के बजाय उन्हें हतबुद्धि बना डालते हैं। ऐसा करना उचित नहीं। छात्र जितने अधिक चिंतन पर विचार करते रहेंगे, उनका हृदय और मन उतना ही प्रतिभासम्पन्न होगा।

पढ़ाई जानेवाली पुस्तकों का निर्माण भी गुरुकुलों को स्वतंत्र करना चाहिए। बेकार और भरकम, अर्थहीन विषयोंके पढ़ने पढ़ानेसे कोई लाभ नहीं। गुरुकुल काँगड़ीने जिस प्रकार अपना पाठ्यक्रम स्वतंत्र बनाया है, अन्य गुरुकुलों को भी उसीप्रकार अपना स्वतंत्र कोर्स बनाना चाहिए। वर्तमान समयको देखते हुए पाठ्यक्रम में उपयुक्त अर्वाचीन और प्राचीन विषयोंका समावेश रहना चाहिए। कुछ लोग स्कूली व कॉलेजों के साथ संस्कृतका पूरा कोर्स रखनेके पक्ष में हैं, परन्तु इससे छात्र दोनोंमें ही अधकचरा रहता है। संस्कृत व्याकरण की पुराने ढंगकी पढ़ाई अब व्यर्थ सिद्ध हो चुकी है, जीवनका बहुमूल्य समय अनावश्यक शंका समाधानोंके घोटनेमें ही बिताना बेकार है। उसी प्रकार आधुनिक इतिहास भूगोल आदिके अनावश्यक अंशोंका घुटाना भी बेकार है। कहनेका तात्पर्य यह है कि अच्छे अच्छे शिक्षा विज्ञोंके द्वारा गुरुकुल के पाठ्यक्रमका निर्माण होना चाहिए।

[illegible]

ज्ञानपीठोंकी उपयोगिता

मानव समाजको जितनी ज्ञानकी आवश्यकता है, उतनी ही अधिक ज्ञानपीठोंकी भी आवश्यकता है। पूर्व जमानेसे ही लोगोंने इसकी जरूरत महसूस की है और उसके फलस्वरूप हमें इतिहाससे अनेकों विद्यापीठों या ज्ञानपीठोंका पता चलता है। संसारके विविध विद्यालय या प्रयोगशालाएं ज्ञानपीठके ही तो नामान्तर हैं। प्रसन्नताकी बात है कि इस दिशामें वर्तमान जैनियोंका ध्यान विद्यालय, स्कूल व कालेजोंके बाद अब ज्ञानपीठोंकी ओर गया है और एकाधिक ज्ञानपीठोंके स्थापित होनेके शुभ संवाद सुननेमें आते हैं। श्रीमान लोग भी दिल खोलकर इस पुण्य कार्यमें अपनी चंचला लक्ष्मीका सदुपयोग कर उसे अचला बनानेका सत्प्रयत्न कर रहे हैं। ज्ञानपीठोंके इस श्रीगणेशके समय मंगलाचरणके रूपमें मैं कुछ जरूरी बातें इस संबंधमें उनके जन्मदाताओं और कार्यकर्ताओंको सुझा देना अत्यावश्यक समझता हूं, जिनसे ज्ञानपीठोंकी उपयोगिता अधिकाधिक सिद्ध हो और उनके अनुकरणस्वरूप समाजमें अनेकों ज्ञानपीठोंका जन्म हो।

ज्ञानपीठोंका उपयोग केवल द्रव्यश्रुतके प्रकाशन तक ही सीमित न रहकर भावश्रुतका प्रकाशन और प्रचारमें होना चाहिए, अन्यथा वे ग्रन्थ प्रकाशिनी संस्थाओंसे अधिक उपयोगी सिद्ध न होंगे। सच बात तो यह है कि ज्ञानपीठोंका क्षेत्र सर्व दिशाओंमें बहुत अधिक विस्तृत है और आजके संसारको स्थायी शान्ति देनेके लिए इन ज्ञानपीठोंकी अत्यन्त आवश्यकता है। ज्ञानपीठोंकी योजना सफल करनेके लिए निम्न बातोंकी अत्यन्त आवश्यकता है:—

(जो, क्योंकि स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी)

(१) ज्ञानपीठोंका स्थान शहरोंके दूषित द्रव्य और भावसे वातावरणसे बिलकुल दूर होना चाहिए। ~~जिन्होंने~~ शान्तिनिकेतन-विश्वभारती, या महात्मा गांधीके सेवाग्रामसे ~~दर्शन किये~~ परिचित हैं, वे ही ~~लोग~~ इस प्रकारके स्थानोंकी महत्ताका अनुभव कर सकते हैं।

(२) ग्रामोंके शान्त, स्वच्छ एवं निराकुल वातावरणोंमें, प्रकृतिके सुन्दर सान्निध्यमें आवश्यक नहीं, कि बड़े २ पक्के मकान बनाये जावें। सेवाग्रामके ढंगके कच्चे पर टिकाऊ एक मंजिला सस्ते मकान बनाकर काम चलाया जा सकता है। प्रारंभमें ही भवन-निर्माणमें बड़ी रकम खर्च कर देना उचित नहीं।

(३) ज्ञानपीठोंमें काम करनेवाले विद्वानोंको वेतन देकर, कानून-कायदोंमें जकड़कर, वर्तमान कालिक प्रचलित मिलशाही या ताकतशाही व्यवस्थाका आभास न देकर पुरातन भारतीय कुटुम्ब-व्यवस्था या साधु-संस्थाका रूप देना चाहिए। इसका खुलासा यह है कि ज्ञानपीठोंमें काम करनेवाले विद्वानोंके रहनेके लिए तो पृथक् पृथक् व्यवस्था हो, पर भोजनकी व्यवस्था सामूहिक एक साथ और एक स्थान पर ही हो। हां, परिस्थिति, योग्यता एवं अन्य आवश्यकताओंके अनुसार उन लोगोंका

[illegible]

P

हाथ रुपये मासिक या वार्षिकके रूपमें पृथक् २ बांधा जा सकता है।। इस व्यवस्थाकी अत्यन्त आवश्यकता बतानेका कारण यह है कि पृथक् २ चूल्हे, चक्की का प्रबन्ध करने, एवं तत्संबंधी अन्य क्रियाओंसे ग्रस्त रहनेमें ही मनुष्यकी बहुत बड़ी शक्तिका एक भाग खत्म हो जाता है। फिर कौटुम्बिक और भोजन संबंधी आसक्ति होने से ज्ञानावरणी कर्मका क्षयोपशम और अध्यवसाय विशुद्ध होनेके स्थान पर मंद ही होता है। इसके विपरीत इन क्रियाओंसे मुक्त रहनेसे एक ओर जहां ज्ञानवृद्धि होगी - दूसरी ओर वहां पारस्परिक प्रेम और वात्सल्यकी वृद्धि होगी। जिनको इस व्यवस्थामें सन्देह हो, वह सेवा ग्रामकी भोजनादि व्यवस्था देखकर उसे दूर कर सकता है। इस व्यवस्थाका दूसरा बड़ा और महत्वशाली लाभ यह होगा - कि विद्वान लोग बच्चोंके पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षाकी चिन्तासे मुक्त रहेंगे। ज्ञानपीठोंमें आजीवन कार्य करने वालोंकी रोटी बनानेकी चिन्ता के भार दूर हो जानेसे उनकी स्त्रियोंको खूब समय मिलेगा और वे अपने अपने बच्चोंका पालन, पोषण, शिक्षा, दीक्षा आदि व्यवस्था भली भांति कर सकेंगी।

ज्ञानपीठोंका प्रधान कार्य ज्ञान-संवर्धन एवं प्रचार है। विद्वान लोग तेल-लकड़ी या बालबच्चोंकी चिन्ताओंसे जितना अधिक मुक्त होगा, उतना ही महत्वपूर्ण ज्ञान संसार को दे सकेगा। आज उस युगके स्वप्न देखना बेकार होगा - जब विद्वान या तो साधु ही हुआ करते थे, या विद्वान ही साधु बन जाता था और निराकुल होकर ज्ञान, धर्म एवं संसारकी अधिकाधिक सेवा करता था।

उक्त व्यवस्था में यद्यपि दोष और आपत्तियां उठाई जा सकती हैं, परन्तु उन सबका परिहार इतनेमें ही है कि ज्ञानपीठोंके कार्यकर्ताओंका चुनाव बड़ी सतर्क और सावधान दृष्टिसे होना चाहिए। ज्ञानपीठका अधिष्ठाता ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध या कमसे कम प्रौढ़ वयस्क एवं प्रभावक व्यक्ति हो। निष्पक्षता और निर्लोभता और सेवाभावी मनोवृत्ति तो उसमें होना ही चाहिए। कार्यकर्ताओंमें धन-लिप्सा की वृत्ति न होकर ज्ञान पिपासाकी मनोवृत्तिका होना अत्यावश्यक है, कुछ दिनों तक काम पर उस क्षेत्रसे हट जाने की भावनावाले लोगोंको सुयोग न देकर उन्हीं लोगोंको चुनाव करना चाहिए, जिनके हृदयमें वस्तुतः ज्ञान-पिपासा तीव्र हो, काम करनेकी लगन और उत्साह हो। उनकी परीक्षा अनेक उपायोंसे की जा सकती है। फिर रोटीकी चिन्तासे मुक्त हो जानेसे अनेकों आपत्तियोंका परिहार तो स्वयं ही हो जाता है।

आशा है, ज्ञानपीठोंके जन्मदाता और भावतः जन्मदाता विद्वान ज्ञानपीठोंकी इस महत्वपूर्ण योजना पर अवश्य ध्यान देंगे। शीघ्र ही इस संबंधमें अपनी अपनी योजनाएं प्रस्तुत कर आरंभसे ही ज्ञानपीठोंकी उस सुन्दर, सर्वहितकारी रूपमें स्थापना आयोजन करेंगे - जिसकी आजके अशान्त, पीड़ित एवं संत्रस्त संसारको अत्यन्त आवश्यकता है। और तभी सच्चे अर्थमें ज्ञानपीठोंकी उपयोगिता सिद्ध हो सकती है।

[illegible]